षोडश खण्ड

भक्त-मन्दिर में भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण राम के मकान पर)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण राम के घर आए हैं। उनके नीचे की बैठक में भक्तों से घिरे हुए बैठे हैं। सहास्यवदन हैं। ठाकुर भक्तों के साथ आनन्द में बातें कर रहे हैं।

आज शनिवार है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तिथि। 23 मई, 1885। समय प्राय: पाँच का। ठाकुर के सम्मुख श्रीयुक्त महिमा बैठे हैं। राम की ओर मास्टर; चारों ओर पल्टु, भवनाथ, नित्यगोपाल, हरमोहन हैं। श्रीरामकृष्ण आते ही भक्तों का समाचार लेते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— छोटे नरेन नहीं आया?

छोटे नरेन कुछ क्षणों के पश्चात् आ उपस्थित हुए।

श्रीरामकृष्ण— वह नहीं आया?

मास्टर— जी?

श्रीरामकृष्ण— किशोरी? गिरीश घोष नहीं आएगा? नरेन्द्र नहीं आएगा?

कुछ समय पीछे आकर नरेन्द्र ने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— केदार (चैटर्जी) होते तो अच्छा होता। गिरीश घोष के साथ खूब मेल-जोल है। *(महिमा के प्रति, सहास्य)* वह

(केदार) भी (अवतार) कहता है।

कमरे में कीर्त्तन होने का आयोजन हो रहा है। कीर्त्तनिया हाथ जोड़ कर कह रहा है— जी, आज्ञा करें तो गान आरम्भ हो।

ठाकुर कहते हैं, तनिक जलपान करूँगा।

जलपान करके बटुए से कुछ मसाला लिया। मास्टर को बटुआ बन्द करने के लिए कहा।

कीर्त्तन हो रहा है। खोल (पखावज) की आवाज से ठाकुर को भाव हो रहा है। 'गौर-चन्द्रिका' सुनते-सुनते एकदम समाधिस्थ हो गए हैं। निकट नित्यगोपाल थे, उनकी गोद पर पाँव फैला दिए। नित्यगोपाल भी भावमय हो रहे हैं। भक्तगण सब अवाक् होकर उस समाधि-अवस्था को एकदृष्टि से देख रहे हैं।

[Yog, subjective and objective, identity of God (the Absolute), the soul and the cosmos (जगत)]

ठाकुर थोड़ा-सा प्रकृतिस्थ होकर बातें कर रहे हैं—

''नित्य से लीला, लीला से नित्य। *(नित्यगोपाल के प्रति)*— तेरा क्या भाव है?''

नित्यगोपाल *(विनीत भाव से)*— दोनों ही अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण आँखें बन्द करके कहते हैं—

केवल ऐसे ही हैं क्या? आँखें बन्द करके ही वे हैं, और आँख खोलने पर नहीं हैं! जिनका नित्य है, उनकी ही लीला है; जिनकी लीला, उनका ही नित्य।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— तुम से भाई, एक बार कहा था।

महिमाचरण— जी, दोनों ही ईश्वर की इच्छा।

श्रीरामकृष्ण— कोई सात तले के ऊपर चढ़कर फिर उतर नहीं सकता, और फिर कोई चढ़कर नीचे आना-जाना कर सकता है।

''उद्धव ने गोपियों से कहा था, तुम लोग जिसको कृष्ण कहती हो, वे

सर्वभूतों में हैं, वे ही जीव-जगत बनकर रह रहे हैं।

''जभी तो कहता हूँ कि क्या आँखें बन्द करके ही ध्यान है, आँखें खोलकर फिर कुछ नहीं ?''

महिमा— एक बात पूछनी है। भक्त को एक बार तो निर्वाण चाहिए ?

(पूर्वकथा— तोता (पुरी) का क्रन्दन—Is Nirvaan the end of life?)

श्रीरामकृष्ण— निर्वाण चाहिए ही, ऐसा कुछ नहीं है। इस प्रकार है कि नित्यकृष्ण उनके नित्यभक्त! चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम!

''जैसे चाँद जहाँ, तारे भी वहाँ। नित्य कृष्ण, नित्य भक्त! तुम्हीं तो कहते हो भाई, अन्तः बहिः यदि हरिस्तपसा ततः किम्* और तुम से तो कहा था कि विष्णु-अंश में भक्ति का बीज नहीं जाता। मैं एक ज्ञानी के पल्ले पड़ गया था, ग्यारह मास वेदान्त सुनाया उसने! किन्तु भक्ति का बीज तो फिर (मेरा) नहीं गया। घूम-फिर कर फिर वही 'माँ-माँ'। जब मैं गाना गाया करता तो वह (न्यांगटा) रोता था— कहता, 'अरे, क्या रे!' देखो, इतना बड़ा ज्ञानी भी रो पड़ता! *(छोटे नरेन इत्यादि के प्रति)* इतना जान रखना कि अलखलता का जल पेट में जाने से पेड़ होता ही है। भक्ति का बीज एक बार पड़ जाने पर अव्यर्थ हो जाता है, क्रमशः वृक्ष, फल, फूल दिखाई देंगे ही।

'' 'मूसलं कुलनाशनम्'। मूसल को कितना ही घिसा गया था, क्षय हो-होकर तनिक-सा, सामान्य-सा बचा था। उसी सामान्य से ही यदुवंश ध्वंस हो गया था। हजार ज्ञान-विचार करो, भीतर भक्ति का बीज रहने पर, घूम-फिर कर, लौट कर फिर हरि, हरि, हरिबोल।''

भक्त चुप करके सुन रहे हैं। ठाकुर हँसते-हँसते महिमाचरण से कहते हैं,

---

* अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्, नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्, नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्सु, व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥
लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्, भवनिगड़निबन्धच्छेदनीं कर्त्तरीञ्च॥

''आप को क्या अच्छा लगता है ?''

महिमा *(सहास्य)*— कुछ भी नहीं, आम अच्छा लगता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्या अकेले-अकेले ? या, आप भी खाओगे और सबको थोड़ा-थोड़ा-सा दोगे ?

महिमा *(सहास्य)*— इतनी देने की इच्छा नहीं है, अकेले ही हो जाने से हुआ।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का ठीक भाव)

श्रीरामकृष्ण— किन्तु मेरा भाव क्या है, जानते हो ? आँखें खोलने पर क्या वे फिर नहीं हैं ? मैं नित्य, लीला— दोनों ही लेता हूँ।

''उनको प्राप्त कर लेने पर पता लग जाता है कि वे ही स्वराट हैं, वे ही विराट हैं। वे ही अखण्ड-सच्चिदानन्द हैं, वे ही फिर जीव-जगत बने हुए हैं।''

(केवल शास्त्रज्ञान मिथ्या, साधन करने से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है)

''साधना चाहिए— केवल शास्त्र पढ़ने से नहीं होता। विद्यासागर को देखा था— बहुत पढ़ा हुआ है, किन्तु अन्त में क्या है, देखा नहीं ? लड़कों को लिखना-पढ़ना सिखाने में ही आनन्द है। भगवान के आनन्द का आस्वाद पाया नहीं। खाली पढ़ने से क्या होगा ? धारणा कहाँ ? पंचांग में बीस आड़ा जल लिखा है, किन्तु पंचांग दबाने पर एक बूँद भी नहीं गिरता!''

महिमा— संसार में बहुत काम हैं, साधना का अवसर कहाँ ?

श्रीरामकृष्ण— क्यों, तुम्हीं तो कहते हो सब स्वप्नवत् है ?

''सम्मुख समुद्र देखकर लक्ष्मण ने धनुर्बाण हाथ में लेकर क्रुद्ध होकर कहा था, मैं वरुण का वध करूँगा, यह समुद्र हमें लंका नहीं जाने देता। राम ने समझाया, लक्ष्मण! यह जो कुछ देख रहे हो, सब तो स्वप्नवत् है, अनित्य है— समुद्र भी अनित्य है, तुम्हारा क्रोध भी अनित्य है। मिथ्या को मिथ्या द्वारा वध करना— वह भी मिथ्या है।''

महिमाचरण चुप किए रहे।

(कर्मयोग या भक्तियोग— सत्गुरु कौन ?)

महिमाचरण को गृहस्थ में बहुत-से काम हैं। और उन्होंने एक नया स्कूल बनाया है— परोपकार के लिए।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण फिर और बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— शम्भु कहता है, मेरी इच्छा है इस रुपये को सत्कर्म में व्यय करूँ, स्कूल-डिस्पेन्सरी कर दूँ, रास्ता-घाट बना दूँ। मैंने कहा, निष्काम भाव में कर सको तब तो वह अच्छा है, किन्तु निष्काम कर्म है बड़ा कठिन— किस ओर से कामना आ पड़ती है! और भी एक बात तुमसे पूछता हूँ, यदि ईश्वर-साक्षात्कार हो तो फिर उनसे तुम क्या कुछ स्कूल, डिस्पेन्सरी, हस्पताल आदि माँगोगे?

एकजन भक्त— महाशय! संसारियों के लिए उपाय क्या?

श्रीरामकृष्ण— साधु-संग; ईश्वरीय कथा सुनना।

''संसारी लोग मतवाले हुए हैं, कामिनी-काञ्चन में मस्त हैं। मतवाले को भात का पानी (पीच, माण्ड) थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहने से धीरे-धीरे होश आ जाता है।

''और सत्गुरु के पास से उपदेश लेना चाहिए। सत्गुरु के लक्षण हैं। जो काशी गया है और देखी है, उससे काशी की बात सुननी चाहिए। कोरा पण्डित होने से नहीं होता। जिसको 'संसार अनित्य है'— यह बोध नहीं हुआ है, उस पण्डित से उपदेश लेना उचित नहीं। पण्डित को विवेक-वैराग्य होने पर ही तब वह उपेदश दे सकता है।

''सामाध्यायी ने कहा था, ईश्वर नीरस हैं। जो हैं रसस्वरूप, उन्हें नीरस कहा था। किसी ने कहा था, मेरे मामा के यहाँ एक गौशाला भर घोड़े हैं! *(सबका हास्य)*।''

(अज्ञान— मैं और मेरा— ज्ञान और विज्ञान)

''संसारीजन मतवाले हुए हैं। सर्वदा ही सोचते हैं, मैं ही यह सब कुछ कर रहा हूँ। और गृह-परिवार— यह सब मेरा है। छरकुटे (छितरे-पितरे,

अव्यवस्थित) दाँत वाला, दाँत निकालकर कहता है, 'इनका (औरत-बच्चों का) क्या होगा? मेरे बिना इनका कैसे चलेगा? मेरी स्त्री, मेरे परिवार को कौन देखेगा?' राखाल ने कहा, मेरी स्त्री का क्या होगा!''

हरमोहन— राखाल ने यह बात कही?

श्रीरामकृष्ण— वैसा नहीं कहेगा तो क्या करेगा? जिसे ज्ञान है उसे अज्ञान भी है। लक्ष्मण ने राम से कहा— राम, यह कैसा आश्चर्य है! साक्षात् वशिष्ठदेव— उन्हें पुत्रशोक हुआ? राम ने कहा— भाई, जिसे ज्ञान है, उसे अज्ञान भी है। भाई, ज्ञान-अज्ञान के पार जाओ।

''जैसे किसी के पाँव में एक काँटा चुभ गया है, वह उस काँटे को निकालने के लिए और एक काँटा जुटाता (ढूँढ़कर लाता) है। फिर उस काँटे से पहला काँटा निकाल लेने पर दोनों ही काँटे फेंक देता है! अज्ञान-काँटा निकालने के लिए ज्ञान-काँटा जुटाना पड़ता है। फिर ज्ञान-अज्ञान दोनों ही काँटों को फेंक देने पर होता है विज्ञान। ईश्वर हैं— इसे ही बोधे बोध करके उनको विशेष रूप से जानना चाहिए, उनके संग विशेष रूप से आलाप करना चाहिए— इसी का नाम है विज्ञान। जभी तो ठाकुर (श्रीकृष्ण) ने अर्जुन से कहा था— तुम त्रिगुणातीत हो जाओ।

''इसी विज्ञान की प्राप्ति के लिए विद्या-माया को आश्रय करना चाहिए। 'ईश्वर सत्य, जगत अनित्य'— यह विचार अर्थात् विवेक-वैराग्य। और फिर उनका नाम-गुण-कीर्त्तन, ध्यान, साधु-संग, प्रार्थना— ये सब ही विद्या-माया के भीतर हैं। विद्या-माया जैसे छत पर चढ़ने वाली अन्तिम कुछ सीढ़ियाँ हैं, और एक धाप (सीढ़ी) चढ़ते ही छत। छत पर चढ़ना अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति।''

(संसारी लोग और कामिनी-काञ्चन त्यागी छोकरे)

''विषयीगण मतवाले हो रहे हैं— कामिनी-काञ्चन में मस्त हैं, होश नहीं। तभी तो छोकरों (लड़कों) को प्यार करता हूँ। उनके भीतर कामिनी-काञ्चन अभी तक प्रवेश नहीं कर पाया है। आधार अच्छा है, ईश्वर के काम में आ

सकता है। संसारियों के भीतर से काँटे चुनते-चुनते सब समाप्त हो जाता है, माछ नहीं मिलती।

''जैसे ओलों द्वारा चोट खाया हुआ आम— गंगाजल डाल कर लेना पड़ता है। ठाकुर (भगवान, देवता) की सेवा में प्राय: नहीं दिया जाता, ब्रह्मज्ञान लाकर तब काटना पड़ता है— अर्थात् वे सब कुछ बने हुए हैं, इस प्रकार मन को समझाकर।''

श्रीयुक्त अश्विनीकुमार दत्त और श्रीयुक्त बिहारी भादुड़ी के पुत्र के संग में एक थियोसोफिस्ट आए हैं। मुखर्जियों ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। आँगन में संकीर्त्तन का आयोजन हो गया है। ज्योंहि खोल बजा, ठाकुर कमरे को छोड़कर आँगन में जाकर बैठ गए। संग-संग ही भक्तगण भी जाकर उद्यान में बैठ गए।

भवनाथ अश्विनी का परिचय दे रहे हैं। ठाकुर ने मास्टर को अश्विनी को दिखा दिया। दोनों जन बातें कर रहे हैं, नरेन्द्र आँगन में बैठ गए। ठाकुर अश्विनी से कह रहे हैं, ''इसका ही नाम नरेन्द्र है।''